जनसत्ता

तूफान से तबाही

चक्रवाती तूफान 'बुलबुल' ने रविवार को पश्चिम बंगाल के बड़े हिस्से और बांग्लादेश के तटीय इलाकों में जिस तरह से कहर बरपाया है, उससे राज्य के आपदा प्रबंधन की पोल खुल गई है। ऐसा नहीं है कि यह चक्रवाती तूफान कोई अचानक आया हो, इसके बारे में मौसम विभाग पहले से ही संकेत दे चुका था। लेकिन समय रहते उन इलाकों को खाली नहीं कराया गया जहां तूफान से सबसे ज्यादा तबाही हुई है। अभी तक दस लोगों के मारे जाने की खबर है, लेकिन बेघरों की संख्या लाखों में है। सबसे ज्यादा तबाही तो दक्षिण चौबीस परगना जिले में हुई है, जहां मछुआरों की एक पूरी बस्ती ही तूफान में उड़ गई। इस चक्रवात ने राज्य के नौ जिलों को अपनी चपेट में ले लिया। ज्यादा तबाही इसलिए भी हुई कि तूफान शनिवार देर रात आया और रविवार तड़के उसने उग्र रूप धारण कर लिया। इसलिए रात को लोग बचाव के लिए कोई उपाय भी नहीं कर पाए। पश्चिम बंगाल में इस साल मई में तूफान 'फनी' आया था और तब भी भारी नुकसान हुआ था। तटीय राज्य होने की वजह से पश्चिम बंगाल को बंगाल की खाड़ी में उठने वाले तूफानों का अक्सर सामना करना पड़ता है। ऐसे में सवाल उठता है कि राज्य में आपदा प्रबंधन के पुख्ता इंतजाम क्यों नहीं किए जाते?

इस वक्त तूफान पीड़ित जिलों में हालात खराब हैं और बड़े पैमाने पर राहत कार्यों की जरूरत है। पेड़ों और बिजली के खंभे गिरने से तबाही वाले इलाकों में पहुंचना भी मुश्किल भरा साबित हो रहा है। ज्यादा चिंता की बात यह है कि तूफान से बड़ी संख्या में मकानों को नुकसान पहुंचा है और इनमें भी कच्चे घरों की तादाद काफी है। हालांकि केंद्र सरकार ने भी राज्य को हरसंभव मदद देने की बात कही है। लेकिन अक्सर देखने में आता है कि ऐसी प्राकृतिक आपदाओं के बाद दो-तीन दिन तक तो राहत काम चलते हैं, बस्तियों में नेताओं-मंत्रियों के चक्कर लगते हैं, तूफान पीड़ित इलाकों के हवाई दौरे होते हैं, लेकिन सरकारें फिर से पुराने ढर्रे पर लौट आती हैं और लोग राहत को तरसते रहते हैं। ऐसे में जिस तरह की जिम्मेदार सरकार और प्रशासन की लोगों को आस होती है वह नदारद दिखता है। हालांकि बंगाल की खाड़ी में एक जहाज से पचहत्तर लोगों को बचाया भी गया। अगर सरकार और प्रशासन समय पर चेते होते तो लोगों को हताहत होने से बचाया जा सकता था। ऐसी आपदाओं से निपटने के लिए राज्यों के पास पुख्ता सूचना तंत्र, मौसम विभाग की सटीक सूचनाएं और आपदा प्रबंधन के पर्याप्त इंतजाम होने चाहिए। लेकिन ज्यादातर जगहों पर देखने में यही आता है कि सब कुछ हो जाने के बाद ही हमारी आंखें खुलती हैं। हालांकि चक्रवाती तूफान जैसी आपदा से निपटने में ओड़िशा से सबक लेना चाहिए जिसने कुछ महीनों पहले ही ऐसी आपदा से सुव्यवस्थित तरीके से निपटा था।

हालांकि भारत में अब मौसम विभाग की भविष्यवाणियां और चेतावनियां पहले के मुकाबले ज्यादा सटीक साबित होती हैं। बिगड़ते मौसम को लेकर मौसम विभाग आगाह कर रहता है। लेकिन अब मौसम चक्र में आए बदलाव और बढ़ते तापमान से चक्रवाती तूफान, तेज आंधी-बारिश जैसे जो चक्र चल रहे हैं वह मौसम विज्ञानियों के लिए भी एक चुनौती है। पिछले कुछ सालों में खासतौर से उत्तर भारत को जिस तरह की प्राकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ा है, उसमें मौसम तंत्र से जुड़ी कई घटनाएं ऐसी हुईं जो पहले कभी नहीं देखी गईं। मौसम अब एक तरह से चुनौती बन गया है। इसलिए प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के इंतजाम भी पुख्ता रखने की जरूरत है।

प्रतिभा का मैदान

यह एक आम हकीकत है कि अगर अवसर का अभाव न हो तो प्रतिभाओं को खोजना बहुत मुश्किल नहीं होता। खासतौर पर खेल के मैदानों में यह अक्सर साबित होता रहा है कि किसी गुमनाम खिलाड़ी ने बहुत कम उम्र में ही अपने प्रदर्शन से दुनिया को चौंका दिया। पिछले दो दिनों में दो बार शेफाली वर्मा ने अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट में जिस तरह का प्रदर्शन किया है, उसने न केवल सबका ध्यान खींचा है, बल्कि यह भारतीय क्रिकेट में भविष्य के लिए एक उम्मीद भी है। महज सोलह साल से भी कम उम्र की शेफाली ने अंतरराष्ट्रीय टी-20 मैच में वेस्टइंडीज के खिलाफ खेलते हुए ताबड़तोड़ उनचास गेंदों में तिहत्तर रन बना लिए और फिर अगले ही दिन पैंतीस गेंदों पर उनहत्तर रनों की नाबाद पारी खेल कर भारत को जीत दिलाई। उनका यह प्रदर्शन इस लिहाज से ऐतिहासिक है कि इससे उनके हिस्से एक बड़ा रेकॉर्ड आया जो अब से तीस साल पहले क्रिकेट के एक मजबूत स्तंभ रहे सचिन तेंदुलकर ने बनाया था और अब तक उसे कोई तोड़ नहीं सका था। यानी इससे पहले अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट में अर्धशतक जड़ने वाले सचिन सबसे युवा खिलाड़ी थे, जिन्होंने अपना पहला टेस्ट अर्धशतक सोलह साल और दो सौ चौदह दिन की उम्र में बनाया था। जबकि शेफाली ने यह उपलब्धि पंद्रह साल, दो सौ पचासी दिन की उम्र में हासिल की।

शेफाली के इस प्रदर्शन के बाद स्वाभाविक ही उनकी तुलना सचिन तेंदुलकर जैसी प्रतिभा के साथ की गई है, क्योंकि वेस्टइंडीज जैसी आक्रामक क्रिकेट टीम के सामने उन्होंने जिस तरह ताबड़तोड़ रन बनाए और मैदान में टिकी भी रहीं, वह उनके प्रदर्शन को सामान्य से अलग ले जाकर खास बनाता है। निश्चित रूप से इस शानदार प्रदर्शन के बाद उनके नाम यह महत्त्वपूर्ण रेकार्ड आया है, लेकिन इससे ज्यादा अहम बात यह है कि क्रिकेट को जिस तरह एक कलात्मक खेल भी माना जाता है, उसमें उन्होंने अपनी क्षमता साबित की। गौरतलब है कि शेफाली हरियाणा के रोहतक इलाके की रहने वाली हैं। महिलाओं को लेकर एक जड़ धारणा वाले समाज से निकल कर शेफाली ने क्रिकेट की दुनिया में अपनी जो जगह बनाई है, उसके लिए उनकी तुलना सचिन तेंदुलकर और वीरेंद्र सहवाग से की जाती है। पिछले महीने ही सूरत में दक्षिण अफ्रीका की टीम के खिलाफ अपने दूसरे ही टी-20 अंतरराष्ट्रीय मैच में उन्होंने छियालीस रनों की शानदार पारी खेली थी। इसके अलावा, उन्हें अभी से मैदान में टिक कर खेलने और शानदार साझेदारी के लिए भी जाना जाने लगा है।

साफ है कि अगर उन्हें लगातार मौके मिलें तो आने वाले दिनों में वे भारतीय महिला क्रिकेट टीम की एक मजबूत स्तंभ के रूप में सामने आ सकती हैं, क्योंकि अवसर की निरंतरता ही किसी खिलाड़ी की प्रतिभा को निखारती है। यों भी अपने देश में महिला क्रिकेट की बड़ी उपलब्धियों को भी उस पैमाने की तवज्जो नहीं मिल पाती है, जितनी पुरुष टीमों की आम कामयाबियों को भी मिलती है। हालांकि यह एक तथ्य है कि प्रतिभाएं मौके की मोहताज होती हैं और उनकी पहचान कर अगर सही समय पर उन्हें मौका मुहैया कराया जाए तो ऐसे तमाम बच्चे-किशोर उभर कर सामने आ सकते हैं, जिनकी काबिलियत अवसर के अभाव में गुमनाम ही दम तोड़ देती है। जरूरत इस बात की है कि खेल संगठनों से लेकर संबंधित सरकारी महकमे तक सचेतन प्रयास करके दूरदराज के इलाकों में छिपी प्रतिभाओं की खोज करें, उन्हें सामने लाएं और हर स्तर पर जरूरी प्रशिक्षण और सुविधाएं देकर उन्हें निखारें।

कल्पमेधा

खुशामदी आदमी इसलिए आपकी प्रशंसा करता है कि वह आपको अयोग्य समझता है, लेकिन आप उसके मुंह से अपनी प्रशंसा सुन कर फूले नहीं समाते।
-टॉलस्टॉय

संकट में पेरिस समझौता

सुविज्ञा जैन

अमेरिका के भीतर भी पेरिस समझौते से अलग होने का विरोध हो रहा है। ट्रंप प्रशासन के इस फैसले के बावजूद अमेरिका के कई राज्य, शहर, उद्योग, संस्थाएं इस फैसले के खिलाफ लामबंद हो रहे हैं। ऐसी करीब तीन हजार आठ सौ इकाइयों का समूह बन चुका है जिसका नाम रखा गया है- 'वी आर स्टिल इन' यानी हम अभी भी समझौते में हैं। इन उद्योगों-प्रतिष्ठानों का इरादा अपने स्तर पर पेरिस समझौते के निर्देशों को लागू रखना है।

एक दशक से जलवायु परिवर्तन का संकट बढ़ता ही जा रहा है। इसी कालखंड में इस समस्या पर पर्यावरण कार्यकर्ताओं और विशेषज्ञों ने सबसे ज्यादा चिंता जताई। दुनियाभर में जागरूकता अभियान चले। फिर भी ज्यादा कुछ हो नहीं पाया, बल्कि धरती का तापमान पहले से कहीं ज्यादा तेजी से बढ़ चला है। मौसम की चाल तेजी से बदलने लगी है। ग्लेशियर पिघलने लगे हैं। समुद्र का स्तर उठ रहा है। कई जीव-जंतु नई परिस्थितियों से तालमेल नहीं बैठा पाने की वजह से लुप्त होने की कगार पर हैं। सूझ नहीं रहा है कि सात सौ सत्तर करोड़ आबादी वाले ग्रह की आबोहवा और तापमान सुधारने के लिए एकमुश्त क्या किया जाए? हालांकि इस बीच जो कुछ सूझा था, उसे करने की जी-तोड़ कोशिश भी की गई। मसलन, विश्वस्तर पर एक पहल चार साल पहले की गई थी, जिसे पेरिस समझौता कहते हैं। लेकिन इस समझौते पर भी इस समय संकट है।

संयुक्त राष्ट्र के तहत यह समझौता सन 2015 में हुआ था। दुनिया के एक सौ छियानवे देशों ने पेरिस समझौते की शर्तों पर सहमति जताई थी। इसका मुख्य मकसद जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कार्बन उत्सर्जन की एक सीमा तय करना था, ताकि पृथ्वी के बढ़ते तापमान को रोका जा सके। पेरिस समझौते का लक्ष्य था कि 2025 तक हर साल जलवायु परिवर्तन रोकने के काम के लिए सौ अरब डालर जुटाए जाएंगे। दुनिया में सबसे ज्यादा कार्बन उत्सर्जन करने वाले देशों की सूची में पहले दो नंबर पर आने वाले अमेरिका और चीन की इस समझौते में भागीदारी से इस करार की कामयाबी की काफी उम्मीदें बंधी थीं। अमेरिका ने इस कोष के लिए तीन अरब डालर देने की पेशकश की थी। लेकिन सरकार बदलते ही अमेरिका ने पेरिस समझौते से खुद को अलग करने का फैसला कर लिया। राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने एक जून, 2017 को एलान कर दिया की अमेरिका पेरिस समझौते में अपनी प्रतिभागिता खत्म कर देगा। इस फैसले का कारण यह बताया गया कि अमेरिका का हित प्रथम है। तर्क दिया गया कि इस समझौते में बंधने से घरेलू उद्योग कारखाने एक सीमा में बंध गए हैं। इससे उत्पादन और रोजगार बढ़ाने में दिक्कतें आ रही हैं। इसके अलावा, कोष के लिए तीन अरब डालर की मदद को भी नई सरकार ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था पर एक बोझ की तरह देखा।

पेरिस समझौते को विश्व बिरादरी की एक ऐतिहासिक पहल के तौर पर प्रचारित किया गया था। दुनिया के लगभग सभी देशों की भागीदारी और लंबे सोच-विचार के बाद समझौते का ढांचा बना था। पेरिस समझौते के अनुच्छेद-28 के तहत कोई भी देश समझौता लागू होने के तीन साल तक अपने आप को इससे अलग नहीं कर सकता था। और उन तीन साल के बाद अलग होने की प्रक्रिया की समय अवधि एक साल की है। इसलिए 2016 से प्रभाव में आए इस समझौते से अलग होने की प्रक्रिया शुरू करने के लिए ट्रंप सरकार को नवंबर, 2019 तक का इंतजार करना पड़ा। पेरिस समझौता लागू होने के तीन साल पूरे होते ही चार नवंबर को अमेरिकी प्रशासन ने इस समझौते से अलग होने की औपचारिक प्रक्रिया शुरू कर दी। इस तरह चार नवंबर, 2020 को यह प्रक्रिया पूरी हो जाएगी और अमेरिका इस समझौते से खुद को अलग कर लेगा। उसके बाद अमेरिका पर कार्बन उत्सर्जन नियंत्रित रखने की कोई बंदिश नहीं होगी, और न ही अमेरिका को संयुक्त राष्ट्र के पास अपने यहां हुए कार्बन उत्सर्जन की मात्रा दर्ज करानी पड़ेगी।

यह मसला एक सौ छियानवे देशों में किसी एक देश के बाहर होने तक सीमित नहीं माना जाना चाहिए। दुनिया के सबसे ताकतवर देश के बाहर होने का असर दूसरे कई देशों पर पड़ना तय है। इस घटना को सिर्फ राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय राजनीति का मामला मानना भी समझदारी नहीं है। मसला पृथ्वी के भविष्य का है। सवाल यह है कि क्या अब वह गुंजाइश बची है कि कोई देश सिर्फ अपना हित देखे और खुद को वैश्विक खतरों से अलग रख सके? यह बात समझी जानी चाहिए कि इस समय विश्व के सामने जलवायु परिवर्तन से ज्यादा सार्वभौमिक क्या और कोई समस्या है?

बेशक अमेरिका हर क्षेत्र में बहुत ताकतवर है। लेकिन देर-सवेर उसे भी सोचना पड़ेगा कि पर्यावरण का मसला सिर्फ आर्थिक वृद्धि में रुकावट तक सीमित नहीं है। इस समझौते से अलग हो जाने

से अंतरराष्ट्रीय समूह में उसकी पैठ कमजार पड़ सकती है। मसलन, ऐसा करके उसने चीन और यूरोपीय यूनियन को वैश्विक नेतृत्व का मौका दे दिया है। चीन इन दिनों जिस तरह से स्वच्छ ऊर्जा पर जोर दे रहा है, उसे देखते हुए आगे यह आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि वह इस मसले पर दुनिया का नेतृत्व करता नजर आने लगे।

बहरहाल, पूरी दुनिया में अमेरिका के इस कदम की आलोचना-समालोचना भी खूब हो रही है। अमेरिका के अंदर और दुनियाभर के जानकार ट्रंप के इस फैसले के पीछे के तर्क समझने में लगे हैं। एक बड़ा कारण यह समझा जा रहा है कि अमेरिका में फॉसिल फ्यूल इंडस्ट्री का वहां की राजनीति में बड़ा दबदबा है। इसी बीच, मीडिया में राष्ट्रपति ट्रंप, उपराष्ट्रपति पेन्स व अमेरिकी एनवायरनमेंटल प्रोटेक्शन एजेंसी के अध्यक्ष स्कॉट प्रुइट और पेट्रोकेमिकल उद्योग के बीच विशेष संबंधों का जिक्र सुनने में आता रहा है। वैसे यह सभी जानते हैं कि पेरिस समझौते से अलग होने का सबसे ज्यादा फायदा कोयला, तेल, ऊर्जा आदि क्षेत्रों में लगी अमेरिकी कंपनियों को होगा। बेशक एक राष्ट्र के रूप में अमेरिका के लिए यह मामला उसकी आर्थिक वृद्धि से जोड़कर दिखाया जा सकता है। अमेरिका ही क्या, बाकी दुनिया पर भी यह बात लागू है। लेकिन यह बात भी दोहराई जानी चाहिए कि जान है तो जहान है। जलवायु परिवर्तन से दुनिया की जान पर बन आई है। आर्थिक वृद्धि और विकास की बातें इसके सामने बहुत छोटी पड़ रही हैं। ऐसा भी नहीं है कि इस बात को खुद अमेरिका के अंदर ही बहुत सारे तबके न समझ रहे हों।

अमेरिका के भीतर भी पेरिस समझौते से अलग होने का विरोध हो रहा है। ट्रंप प्रशासन के इस फैसले के बावजूद अमेरिका के कई राज्य, शहर, उद्योग, संस्थाएं इस फैसले के खिलाफ लामबंद हो रहे हैं। ऐसी करीब तीन हजार आठ सौ इकाइयों का समूह बन चुका है जिसका नाम रखा गया है- 'वी आर स्टिल इन' यानी हम अभी भी समझौते में हैं। इन उद्योगों-प्रतिष्ठानों का इरादा अपने स्तर पर पेरिस समझौते के निर्देशों को लागू रखना है। गौरतलब है कि अमेरिका की इन सभी इकाइयों का अमेरिकी सकल घरेलू उत्पाद में करीब सत्तर फीसद योगदान है। ये इकाइयां दो तिहाई अमेरिकी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह समूह इतना बड़ा है कि अगर वह एक अलग देश होता तो इसे विश्व की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था कहा जाता। अमेरिका में कई अलग शहरों के जनप्रतिनिधि और बड़ी कंपनियां अपने-अपने स्तर पर अपने क्षेत्रों में पेरिस समझौते को लागू रखने की तरफदार हैं। इसके पीछे कई कारण हैं। खुद अमेरिका ही पिछले कुछ सालों में जलवायु परिवर्तन का शिकार बनने लगा है। चाहे वह कैलिफोर्निया के जंगलों की आग हो, मायामी में बढ़ता समुद्र का स्तर या ह्यूस्टन और पोर्टोरिको में भीषण तूफानों से हुई घरों और कारखानों की तबाही। ऐसी प्राकृतिक आपदाएं बढ़ने लगी हैं। वैज्ञानिक इसका सबसे बड़ा कारण जलवायु परिवर्तन को बता रहे हैं। कुल मिलाकर समस्या की तीव्रता को लेकर कोई संशय नहीं है। न ही पेरिस समझौते की जरूरत को लेकर कोई विवाद था। लेकिन इधर इस समझौते पर संकट का मंडराना जरूर एक चिंता पैदा कर रहा है।

पैदल से पैदल तक

विप्रम

देखा जाए तो हम पैदल चलने वालों से कुछ नहीं सीखते, बल्कि पैदल को कोई अहमियत भी नहीं देते। आता-जाता हर कोई उसे उसकी हैसियत या सीमा बता जाता है। जबकि ऐसा है नहीं। शतरंज के खिलाड़ी खूब जानते हैं 'पैदल' को। उसकी चाल किस-किस की राह रोक लेती है, यह गौर करने की बात है। इसके आगे बड़े-बड़े हाथी-घोड़े तक पानी भरते हैं। पैदल से एक मुहावरा बनता है। यह वैसे व्यक्ति पर विशेष रूप से लागू होता है जो जानता तो कुछ नहीं, पर हर काम में टांग अड़ाता है। ऐसे में उसे कह दिया जाता है- 'क्यों भई? क्या पैदल से हो?' मजे की बात यह है कि जो खुद 'पैदल से' होता है, आमतौर पर वही दूसरे को यह समझता है। ऐसे में कौन असली 'पैदल से' है और कौन नकली, उसकी पहचान के लिए एक तीसरे की खोज करनी पड़ती है।

जिया लाल शास्त्री हमारे पड़ोसी हैं जो एक स्कूल में शिक्षक भी हैं। उनका स्कूल तो दिल्ली के जामा मस्जिद इलाके में है, लेकिन वे बस से अक्सर दो किलोमीटर पहले उतर जाते हैं। एक दिन हमने पूछा- 'मास्टरजी, आपको जामा मस्जिद बस स्टैंड पर उतरना चाहिए, पर आप उससे काफी पहले क्यों उतर जाते हैं?' वे मुस्कराए, फिर बोल पड़े- 'ये अपना स्टाइल है। हालांकि किराया बराबर ही लगता है, लेकिन असल में मैं पहले इसलिए उतर जाता हूं, ताकि कुछ दूर पैदल चल सकूं। पैदल चलने का एक अलग ही आनंद है। इधर-उधर देखते हुए चलो। रास्ते में कुछ पसंद आ जाए या दिख जाए तो उसे खरीद लो।'

दुनिया मेरे आगे

इस क्रम में कई बार ऐसे मित्र-परिचित भी मिल जाते हैं जो सालों से नहीं मिले। जिनका अता-पता नहीं था। चूंकि दोनों ही पैदल होते हैं, इसलिए मिल गए। यों भी, डॉक्टर साहब कहा करते हैं- 'आपका पेट बाहर आ रहा है। आप पैदल चला करें। कम से कम पांच किलोमीटर चलेंगे तो आपके लिए अच्छा है। वजन घटेगा और दवाइयां भी कम लेनी पड़ेंगी। जेब को आराम मिलेगा, वह अलग। खरीदारी की दिशा और दशा बदल जाएगी।' हम डॉक्टर साहब को देख कर मुस्करा उठे। उनकी ताकीद तो समझ में आ रही थी, पर यह हमारी समझ से परे था कि ये बातें वे खुद पर क्यों नहीं आजमाते! लेकिन मैं चुप रहा। डॉक्टर साहब से पंगा कौन ले!

हालांकि कहते हैं कि पैदल चलने वाले कभी मोटे नहीं होते, न ही उनका पेट बाहर निकलता है। गांधीजी की राह दौड़ते चला जाए, दुनिया पीछे भागेगी। इस 'भागने' का संदर्भ केवल दौड़ने से नहीं, अनुसरण करने से भी है। इसमें अगर पैदल चलना है तो यह जोड़ा जा सकता है कि पैदल के पंजे जमीन के समांतर चलें, ऊपर उठने न पाएं, वरना पैदल-राग अधूरा। जमीनी व्यक्ति और हवाबाज व्यक्ति का चलन हमेशा विपरीत होता है। उसी के मुताबिक एक जमीन पर रह कर दूसरों को जमीन सुंघा सकता है। जबकि आसमान में उड़ने वाला जब भी जमीन पर आता है तो उसके अंजर-पंजर सब हिले होते हैं। ऊपर से और यह कह दिया जाता है- 'जनाब, बड़ी देर कर दी आपने जमीं पर आते-आते।' एक जमाना था। हमारी सेना में पैदल सैनिक बहुत संख्या में थे। गांव भर के युवा जन सब सेना में कूच कर रहे होते थे। नए बच्चों को वैसे भी खेती से कम ही लगाव रहता है। ये बच्चे महत्त्व देते हैं देश को। देश की खातिर खेत होने से बिल्कुल भी डरते नहीं।

यह तो अच्छा हो गया इस वैज्ञानिक युग में। आपस की लड़ाइयां अब पैदल की न होकर हवाई-हवाई हो गई हैं। कुछ देश अपने आकार में बहुत छोटे हैं। लेकिन बात-बेबात पर बेलगाम होते रहते हैं। छोटे होने के बावजूद खुद को बहुत बड़ा तीसमार खां समझते हैं, अपने पास रखे हथियारों के बल पर। कहते हैं, कमजोर के हाथ कोई असलहा पड़ जाए तो वह अपने को बहुत बड़ा पहलवान समझने लग जाता है। जबकि असल में उसके हमदर्द देश समझाते हैं उसे। वे जानते हैं कि जो खुद 'पैदल से' है, वह क्या निकालेगा दूसरे की हवा! आज के समय में सब जान रहे हैं कि टकराव का अर्थ है युद्ध, बल्कि महायुद्ध। एक बटन दबा नहीं कि चारों तरफ धमाका और आग। इसलिए चलते रहना चाहिए पैदल। दूसरों को भी चलाते रहना चाहिए। पैदल का जमाना बहुत पुराना है और आगे भी उसका जमाना आएगा।

कभी हम दस किलोमीटर की दूरी भी पैदल तय कर लेते थे। तब पुराना जमाना था और नई उमर थी हमारी। आज हमारी उम्र नहीं रही और जमाना नया हो गया। पहले साधन सीमित हुआ करते थे, अब बिल्कुल सब नया-नया। दुनिया चांद पर पहुंच गई और हम 'पैदल से' खड़े हैं अपना सिर खुजाते। यानी आप कह सकते हैं कि हम अभी भी वहीं ठहरे हुए हैं- पैदल से पैदल तक।

जाति की जकड़

कुछ दिन पहले उत्तर प्रदेश पुलिस ने गौतम बुद्ध नगर में सैकड़ों ऐसे वाहनों का चालान किया जिन पर अहंकार भरे जातिसूचक शब्द लिखे थे। पिछले कुछ समय से वाहनों पर जाति लिखने का चलन बढ़ता जा रहा है। आजादी के बाद से ही जाति बताने की यह प्रवृत्ति राजनीतिक रूप से फायदेमंद मान कर राजनीति में भी खूब चलती रही है। जाति का मसला दुनिया में अपनी तरह का अलग ही है। बाकी विश्व में ऊंच-नीच पर आधारित इस तरह की व्यवस्था शायद ही कहीं पाई जाती हो। जाति पर टिके भारतीय समाज में जातिवाद को समाप्त करने के जितने प्रयास हुए उनमें बहुत ज्यादा ईमानदारी नहीं रही। सरकार के स्तर पर भी अधूरे मन से कोशिशें हुईं।

जाति आधारित समाज में जाति की समाप्ति का जो आधारभूत आंदोलन चलना चाहिए था, उसके लिए भी ईमानदारी से प्रयास ही नहीं किए गए क्योंकि आजादी के बाद राजनीति की धुरी जाति ही बनी। जाति के गुणा-भाग के हिसाब से राजनीतिक पार्टियां भी बनीं। जाति के गणित को देख कर टिकट बांटे गए, मंत्रालय दिए गए और पदों की बंदरबांट हुई। जाति के आधार पर ही वोट मांगे जाते रहे। मीडिया ने भी चुनावों को जाति के नजरिए से देखा। आज भी जातीय समीकरण देख कर चुनाव की खबरें लिखी जाती हैं। मीडिया चुनाव क्षेत्र में बाकायदा विभिन्न जातियों के मतदाताओं की संख्या को आधार बना कर गिन कर रिपोर्टिंग करता है।

हजारों साल के जातीय अहंकार की प्रदर्शनी पहले तो जाति सूचक उपनामों में ही दिखती थी, फिर दुकानों, घरों और प्रमाणपत्रों से होती हुई यह बीमारी वाहनों तक आ गई है, जहां बहुत आक्रामक रूप में अत्यंत दर्प से भरे जाति के नाम राह चलते देखने को मिल जाते हैं। कल हो सकता है कि लोग अपने वस्त्रों पर भी जाति लिखवा कर चलने लगें!

समाज में वैज्ञानिक तरक्की का डिजिटल दौर भी इस जातीय अहंकार को बढ़ावा देने का औजार बन गया है। फेसबुक, व्हाट्सएप और अन्य सोशल मीडिया मंचों को भी लोगों ने जातिवाद का मंच लिया है। दरअसल, हम जितने आधुनिक साधनों से संपन्न होते जा रहे हैं उतने ही संकीर्ण जातिवादी सोच से ग्रस्त होते जा रहे हैं। वैज्ञानिकता, तार्किकता, संवैधानिक मूल्य सब जाति के नाम के आगे बेमानी हो जाते हैं। एक लोकतांत्रिक समाज में जाति सूचक शब्द समानता और समरस समाज के निर्माण की राह में बाधक हैं। अब भी समय है कि जाति की संकुचित अहंकारी सोच पर रोक लगे और जाति की समाप्ति के सार्थक प्रयास भी किए जाएं।

● *बिजेंद्र कुमार, आंबेडकर कॉलेज, दिल्ली*

नापाक मंसूबे

करतारपुर गलियारे के होर्डिंग्स में पाकिस्तान ने तीन खालिस्तानी नेताओं को भी दिखाया जिससे उसकी मंशा साफ हो गई है। साफ है कि वह करतारपुर गलियारे की आड़ में खालिस्तान समर्थकों को उकसाने का काम कर रहा है। पंजाब के मुख्यमंत्री कैप्टन अमरिंदर सिंह ने इस संदर्भ में एकदम सही कहा कि पाकिस्तान एक तरफ से प्यार जता रहा है और दूसरी तरफ से गड़बड़ करने की कोशिश में लगा है। भारत को पाकिस्तान के नापाक मंसूबों से सावधान रहना होगा।

● *रवि प्रशांत, नई दिल्ली*

सद्भाव का पोषण

कहते हैं कि मसला जितना गंभीर हो, उसे हल करने में उतना ही विस्तृत और समावेशी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अयोध्या विवाद पर शीर्ष न्यायालय के निर्णय में वही दूरदर्शिता और विवाद का मूल से समाधान करने की पूर्णता नजर आती है जिसमें उच्च न्यायालय समन्वयकारी निर्णय के फेर में कहीं चूक गया था।

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

पूर्व की तरह शीर्ष न्यायालय ने भी इसे आस्था के बजाय जमीन विवाद का मसला मानते हुए विवादित हिस्से को मंदिर के निर्माण के लिए हिंदू पक्ष को देने और पांच एकड़ भूमि अयोध्या में किसी प्रमुख स्थान पर सुन्नी वक्फ बोर्ड को उपलब्ध कराने का निर्देश सरकार को दिया।

अपनी गरिमा के अनुरूप धार्मिक सौहार्द की व्यापक लकीर खींचते हुए एक तरफ शीर्ष न्यायालय ने कहा कि मस्जिद के पूर्व ही मंदिर का अस्तित्व था तो वहीं यह भी बताया कि मंदिर को तोड़कर मस्जिद बनाने का कोई भी साक्ष्य नहीं है। न्यायालय के ये शब्द हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों के ही जनसाधारण में व्याप्त दबी मगर कटु अवधारणा के मिथक को तोड़ते हैं और आपसी सद्भाव का पोषण करते हैं।

निस्संदेह सबूतों पर आधारित यह समन्वयकारी निर्णय बताता है कि किस प्रकार शीर्ष न्यायालय ने न केवल निर्णायक बल्कि दोनों धर्मों के अनुयायियों के लिए अभिभावक और समन्वयक की भूमिका का भी निर्वाह किया।

● *नवनीत सिंह 'शिवम', नई दिल्ली*

प्रकृति पर्व

प्रकृति, स्वच्छता, संसार को प्रकाशित करने वाले सूर्यदेव, जीवनदायी जल और वायु को स्वच्छ रखने वाली हरियाली का पर्व है छठ। बांस के सूप, टोकरी, मिट्टी के दीये। कुछ भी ऐसा नहीं मिलेगा आपको इस पर्व में जो प्रकृति के खिलाफ हो। खरना में गेहूं की रोटी, दूध-गुड़ की खीर का प्रसाद या फिर छठ में फलों का प्रसाद, गेहूं-गुड़-घी के ठेकुआ का प्रसाद, कहीं कुछ भी मिलावटी नहीं। निर्जला व्रतधारियों की जमीन पर सर्द मौसम के बावजूद पुआल के बिस्तर पर सोकर तपस्वी रूप में की जाने वाली यह पूजा हरि अनंत हरि कथा अनंता की तरह है।

तलाशने से नहीं मिलता कोई और पर्व, जिसमें बेटी की कामना भी की जाती है। रुनकी-झुनकी यानी चंचल सी बेटी छठी मइया से मांगने का लोकगीत बहुत प्रचलित है। आपने भी सुना ही होगा, जिसमें बेटी होने का वरदान मांगने के साथ-साथ सुशिक्षित दामाद की भी कामना है- पढ़ल-पंडितवा दामाद। यहां हमारी सोच में होता है कि उगते सूरज को नमन किया जाता है, लेकिन छठ में आप जानते ही हैं कि उगते सूर्य के साथ-साथ अस्ताचल सूर्य को भी नमन करते हैं, जो अपना कर्तव्य पूरा कर डूब रहे सूर्य के प्रति आभार जताने का पर्व है। यह परंपरा हमें पूर्वजों के प्रति, घर के बड़े-बुजुर्गों के प्रति वैसी ही भावना रखने को प्रेरित करती है, जिस भावना के साथ हम उगते सूर्य को पूजते हैं।

● *मो ताबिश, जामिया मिल्लिया इस्लामिया*

नई दिल्ली